प्रभु को देखने से होती है की सुखवृद्धि।
इनको प्रेमा देख होत आनंद मन के माहीं
(3) जनक महाराज — पूर्व जन्म में प्रभु को
जामाता रूप में प्राप्त करने हेतु घोर
तप किया था (विष्णु हरिदेव ने तप किया था
(मानस पीयूष भाग 2 पृष्ठ 489) अपने
समय में ज्ञानियों में अग्रगण्य थे सदैव
ब्रह्मानंद में डूबे रहते था इनका [illegible]
पूर्ण वैराग्यी मन । ब्रह्म ही के तो भी
राम का अवतार लिया अतएव जिसकी
कल्पना में जनक महाराज सदैव डूबे
रहते थे वह ही जब साकार स्वरूप
उपस्थित हो जाता है तब उनका वैरागी
मन का अनुराग में मग्न कर बरबस
ही कल्पना से दूर कर श्रीराम के श्री
मुख को निहारने लगता है और अपने
मनोभावों को विश्वामित्र जी के सामने
व्यक्त करते हैं जिससे पता चलता है
कि इनका अवतारता का प्रभु दर्शन
के लिये कितना आतुर रहता था

(1420)

देखहिं बिलोकत गहति अनुरागा।
नरबसु वृद्ध कुरव हि मन रघराजा (१-२४८)
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू।
पुलक गात उर अधिक उछाहू।।

और सबसे सुंदर एवं सुखदेवे सुखद बास स्थान में उन्हें ठहराते हैं। और जब प्रभु धनुष यज्ञ-शाला में पधारते हैं तब महाराज जनक एवं महारानी सुनयना दोनों की पूर्वजन्म में ब्रह्म को जामाता रूप में प्राप्त वरदान की स्मृति जाग उठती है एवं प्रभु को सिसु सम देखते हैं

"सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी।। (१-२४२)

और कन्यादान के बाद जनक आनंद के कारण अपने देह की सुधि तक खो देते हैं

"क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु
मूरति सावँरीं (१-३२४)

और बिदाई के समय में उनके उद्गार
स्पष्ट बताते हैं कि जनक जी राम को
ब्रह्म ही देख रहे हैं
"ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी।
चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥
नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त
सुख मूल" (१-३४१)

(४) भगवान शंकर — प्रभु श्री राम को तो
शंकर भगवान अपना इष्ट देव ही
मानते हैं एवं भाव पूर्ण भक्ति से श्री
राम नाम आपको भी सर्वदा अनुरागवश
शम्भु दिन रात जपते रहते हैं एवं श्री
राम चरित मानस का यह पावन प्रवाह
भी तो शंकर जी के श्री मुख से पार्वती जी
के सम्मुख प्रवाहित हुआ है
"सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।" (१-५१)
"तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनँग आराती॥ (१-१०८)
रघुपति चरित महेस तब हरषित
बरनै लीन्ह॥ (१-१११)

(१५२२)

राम कथा गिरिजा मैं बरनी।
कलि मल समनि मनोमल हरनी॥

महेश जिन्होंने श्री राम कथा कही है उस में अपने श्री राम के श्रोता भी हैं। कुम्भज ऋषि से राम कथा सुन कर गिरिजा के साथ महादेव कैलाश की ओर जा रहे हैं उसी समय रावण सीता को हर ले जाने के कारण सीता वियोग में श्री राम पागल की भांति सीता को ढूंढ कर नर लीला कर रहे हैं। महेश के हृदय में प्रभु दर्शन की लालसा उमड़ उठी किन्तु प्रभु श्री राम का भेद खुल जाने से रावण-वध में बाधा उपस्थित होने के भय से प्रभु के नयनों के दर्शन लोभ को संवारे हुए भगवान शंकर दूर ही से जय सच्चिदानंद जगपावन कहकर प्रणाम कर लेते हैं इस प्रेम-मग्न पुलकित गात प्रणाम कर जाते हैं

"हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ॥
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥" (1-48)

"जय सच्चिदानंद जग पावन।
अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥" (1-50)

श्रीराम-जन्म के अवसर पर प्रभु के शिष्य काकभुसुंडी के साथ अयोध्या की सड़कों पर मनुष्य देह धारण कर विचरते हैं "औरउ एक कहउँ निज चोरी।
सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि ~~~~ संग हम दोऊ।
मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानंद प्रेम सुख फूले।
बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥" (1-196)

सीताराम के विवाह अवसर पर पंचानन बसह पर सवार हो पुलकित गात हो विवाह देखने जनकपुर पधारते हैं। राम की सुंदर मनमोहक छवि देख देख कर त्रिनेत्र

(1424)

पंचानन को अनुज के पदुम नैनु अत्यंत प्रिय लगते हैं क्योंकि पदुम हैं नयनों से दर्शन-सुधा का पान कर सकते हैं

प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥ (१-३१४)
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥ (१-३१६)

रावण को पराजीत कर विभीषण के राज्याभिषेक के बाद सीता सहित प्रभु की स्तुति कर जब इन्द्रादि देवता चले जाते हैं तब सुअवसर (शिवजी) जानकर शम्भु आकर ~~श्रीराम की स्तुति~~ पुलकित तन अंबुर प्रेमाश्रु से परिपूर्ण नैनु होकर ~~जाते हैं~~ श्रीराम की स्तुति करते हुए सबसे पहले "मामभिरक्षय रघुकुल नायक" यानि स्वामि आप कहकर माँगते हैं "बसहु राम नृप मम उर अंतर" (६-११५) इससे उनकी भावना जानी जाती है। इसी प्रकार अयोध्या में भी राम के राज्याभिषेक व्यवस्था

कर भी स्तुति करके और देव लोकों और बंदी छोड़ के आये हुए देवों के चले जाने के बाद है स्नेह से स्तुति कर प्रणाम कर प्रभु पद में अविचल भक्ति की ही याचना करते हैं (6-45) इस प्रकार प्रभु-दर्शन के अवसर का भगवान शंकर प्रचुरता से उपयोग करते ही रहते हैं।

(5) काकभुसुंडी जी — हरि-यान गरुड़ जी के आग्रह पर अतीत जन्मों का वर्णन करते हुए कहते हैं एक जन्म में ब्राह्मण शरीर पाया तब मुनियों से श्री राम के गुण-ग्राम सुन कर अति हर्ष होता था तब एक लालसा हृदय में रहती चली आयी कि श्री राम के चरण कमलों के दर्शन करूं तब जन्म सफल हो। लोमश मुनि निर्गुण का उपदेश करने लगे किन्तु इनकी तो लालसा सगुण रूप प्रभु के दर्शनों की थी अतः लोमश मुनि क्रोधित

(1426)

दोनों को होजाने का श्राप देने के
कारण सगुण दर्शन का हठ इनके मन
ने धारण दृढ़ता से कर लिया था।

"छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी।
एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं।
तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥ (७-११०)
सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला।
सपदि होहि पच्छी चंडाला॥ (७-११२)

हर्षित हो काक बनकर उड़ चले तब
इनकी महान शीलता एवं राम चरन
में अटल विश्वास से संतुष्ट हो ऋषी
ने इन्हें बालक राम के ध्यान का हेते
हुए राम मंत्र की दीक्षा दी

"रिषि मम महत सीलता देखी।
राम चरन बिस्वास बिसेषी॥
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा।
हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥
बालक रूप राम कर ध्याना।
कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
(७-११३)

श्री राम जन्म के अवसर पर भगवान
शंकर के साथ काकभुसुंडी जी
मनुष्य का वेश धर कर अयोध्या
की सड़कों पर घूम घूम कर आनंद
मग्न फिर रहे हैं (७-१९६) जब जब
प्रभु श्री राम इस धरातल पर नरदेह
में अवतीर्ण होते हैं तब तब अयोध्या आ
कर काग देह धारण कर भुसुंडी
जी प्रभु की पाँच वर्ष की उम्र होने
तक उनकी बाललीला का आनंद
लेते एवं गुणगान करते प्रभु की जूठन
रूपी प्रसाद पाते रहते हैं एवं प्रभु
भी पुआ दिखा दिखा कर काग
को बुला बुला कर इनके साथ बाल
लीला करते रहते हैं। इस काक को
अपने मुख के रास्ते पेट में रख
कर अपने विराट रूप का दर्शन तक
प्रभु कराते हैं। ~~[illegible] भुसुंडी की~~

जब जब राम मनुज तनु धरहीं।
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ।

(1429)

बालचरित बिलोकि हरषाऊँ ।।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई ।
बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई ।।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ ।
(७-७७)
किलकत मोहि धरन जब धावहिं ।
चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ।।
(७-७९)
बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं ।।
उदर माझ सुनु अंडज राया ।।
देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ।।(७-८०)
उभय घरी महँ मैं सब देखा ।।
(७-८२)
सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ ।
भगतबछलता प्रभु कै देखी ।
उपजी मम उर प्रीति बिसेषी ।।(७-८३)
धन्य है भुसुंडी जी का राम-चरनों में
अटल विश्वास कि नर तन से काक
तन पाकर भी विश्वास बना रहा।
तभी तो प्रभु ने इतनी बड़ी
कृपा की उन के ऊपर।

(ख) सनकादि मुनि — इनका यह व्यसन है कि जहाँ जहाँ हरि-चरित्र कथा होती है ये सुनने पहुँच जाते हैं। राज्याभिषेक के बाद एक बार जब प्रभु अपने भाइयों और हनुमानजी को साथ उपवन में। जिस अवसर पर सब सदा ब्रह्मानंद में लीन रहने वाले सदा बाल शरीर वाले सनकादि मुनि प्रभु दर्शन हेतु पधारे। प्रभु की छवि देखकर अनुराग से प्रफुल्लित नयनों से इस मकरन्द माधुरी का रस पीने लगे — नेत्रों में प्रेमाश्रुधारा बह रही है तन पुलकित है। प्रभु ने प्रणाम कर इनके हाथ पकड़ कर बैठा लिया — ये तो प्रभु दर्शन के लिये ये प्रतिदिन अयोध्या आते ही रहते थे :

नारदादि सनकादि मुनीसा।
दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं
(७-२६)

(१४३०)

जानि समय सनकादिक आए।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना।
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी।
भए मगन मन सके न रोकी।
एकटक रहे निमेष न लावहिं।
सुबल नयन जल पुलक सरीरा।।
(७-३३)

(५) नारद — प्रभु श्री राम के अवतार के अनेक कारणों में नारद का श्राप भी एक है यद्यपि यह श्राप भी रघुनाथ से ही था। "मम इच्छा कह दीनदयाला" (१-१३९)। इनका वचन है कि जिनने भगवती सीता का मन लीन्हा।। वही नर इनको भी लेगए "सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।।" पम्पा सर तट पर प्रभु हैं तब प्रभु के दर्शन हेतु देवर्षि नारद आते हैं
महाबिचारि नारद कर बीना।
गए जहाँ प्रभु सुख आसीना।।
(३-४१)

युद्ध में मारे जाने पर कुम्भकर्ण की ज्योति प्रभु के
मुख में समा गयी। इस समय जब
सारे देवता स्तुति कर चले बाद
नारद आकर आकाश से प्रभु के
गुन गान कर चले गये। "तेही समय
देवरिषि आवा। पुनि गावौं परि हरि
गुन गन भारा। (६-७५)" यों तो
ये युद्ध आकाश से निपात हो देवता
ही रहते थे। नागपाश में जब प्रभु
बाँध लिये गये तब नारद ने ही गरुड़
को भेजा था नागपाश से प्रभु को
मुक्त करने के लिये। "कहो देवरिषि
गारुड़ पठायो" (६-७४)। प्रभु के
राजतिलक के बाद नारद प्रतिदिन दर्शन
के लिये अयोध्या आते थे (७-२८)
श्री रामचरितमानस में प्रभु चरित
की समाप्ति में भी नारद आकर प्रभु
की स्तुति का गान करते हैं और फिर
ब्रह्म लोक चले जाते हैं। "प्रेम सहित
मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।

सोभा सिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ निमि धाम।। (७-५१)

(३) नारियाँ – जब नारियों ने देखा राघव को अपने सामने से पार डालेगा

"तब सबरी कीस रघुनायक चरना।
चली धाम करि प्रेम अनुसरना।।
मन अनुमति हरष अनावन नैनी।
आजु देखिहउँ परम सनेही।।
मम पाहुँ पर धावत सौरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन।। (३-२६)

कितनी आतुरता है उनमें प्रभु दर्शन की।

(४) भरत – अयोध्या के जैसे समृद्ध राज्य को ठुकरा कहते हैं "जाइ दिखाइ मोर सबु बिनु रघुराई।। आवउँ राम पद हिं आयसु देहू देखिहि आजु मोर हित रहू।। (२-१७८)

इतना प्रभु प्रेम देखकर निषाद उनके शरीर की सुध खो देता है

"~~[illegible]~~ देखि भरत कर सीलु सनेहू।
भा निषाद तेहि समय बिदेहू।।
(२-१९०)

उनके लिये भरद्वाज मुनि का मत है

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥ (२-२०८)

प्रेम की अधिकता में पुलकाई उठते हैं — राम लखन सिय सुमिरि गुन नाऊँ। उठि अनि पुलकत आइहिं तजि ठाऊँ॥ (२-२०३)

प्रभु के सम्मुख पहुंचने पर

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥ (२-२४०)

(१४) लखन लाल — यद्यपि प्रभु के साथ रहते, पर क्षण भर का वियोग न सह सकते, वनवास के निकट साथ ले जाने के लिए कितने मार्मिक शब्दों से प्रभु से विनती कर रहे हैं — मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥ (२-७२)

(१५) सीता जी — जनक जी के बाग में प्रभु का आगमन सुनकर कितनी आतुर होती हैं — तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥ (१-२२९)

१५३५)

धनुर्भंग के विजय माल पहनाने पर
जब सीता चरण स्पर्श करने को
करती हैं तब अहिल्या की गति स्मरण
कर वियोग के भय से प्रीति प्रत्यक्षीकृत
हो जाती है "गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ (१-२६५)"
वनगमन के समय जब सीता जी जाने
में प्रभु आनाकानी कर रहे हैं तब
प्रीति विकल हो जाती है "बचन बियोगु न
सकी सम्हारी" (२-६८) वियोग के
वचन भी न सह सकने वाली सीता की
वास्तविक वियोग के समय प्रभु के ध्यान में तल्लीन
रहने से … हुई की दशा का वर्णन
पवनसुत प्रभु के सम्मुख करते हैं
"नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान
केहि बाट॥" (५-३०)

(१२) हृदयंगम — प्रभु की … सीता
स्वयं से गये हुए अंगद की सिंधु-
तट पहुँचा देने के बाद प्रभु दर्शन

(1435

के अनुरूप सिद्धि देती है स्वयं प्रभु
प्रभु के सम्मुख जाकर नारायण से
विनती करते हैं और अपनाये जाकर
वदीकरण जाने की प्रभु आज्ञा के अनुरूप
चली जाती है "ऐसे पुनि गई जहाँ रघुनायक
बरवीलन कहूँ सो गई प्रभु आगे चढ़ि सीय (4-26)"

(12) प्रबन्ध न प्रेमी भक्तों की गाथाएँ पुस्तक
में लिखी जा रही है जिनके स्थानों में जा
आकर प्रभु ने उनकी दर्शनों की अभिलाषा
इच्छा की पूर्ति प्रभु करते हैं

(13) मिथिलावासी — विशेषता: नारियों एवं
बालकों ~~[illegible]~~ ने प्रभु की सुंदरता का वर्णन
सुनते ही उनका हृदय दर्शनों के लिये
व्याकुल पर दर्शन मिलें कैसे। उनकी ~~[illegible]~~ यह
व्याकुलता प्रभु से आन्तरिक सरवन से छिपी
न रही और उन्होंने इसकी उपाय निकालने
के लिये ही मिथिलापुरी देखने की इच्छा केवल
मन ही मन मुनि का कर व्यक्त की। सर्वज्ञ प्रभु
से कुछ छिपा न रहा भक्तवत्सल प्रभु की
आज्ञा माँगी। विश्वामित्र जी सर्वे सफल इच्छा ...

राम अनुज मन की गति जानी।
भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जाइ देखि आवहु नगरु सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ॥ (१-२१८)

जब यह समाचार फैल गया कि दोनों भाई
नगर देखने आये हैं सब काम छोड़कर
जनता [illegible] दौड़ पड़ी

जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती।
सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥ (१-२२१)
सखि हमरें आरति अति तातें।
कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥ (१-२२२)
नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥ (१-२२२)
हिय हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥ (१-२२३)

"पुरबासिन्ह करहिं कृपा बचना।
सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥
सब सिसु सहहिं भिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात॥
सिसु रनजन सुनि सबु लोहिं बोलाई।
सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥ (1-224)

(14) जलचर – समुद्र पर सेतु बाँध कर तैयार है प्रभु सेतु पर चढ़ कर जलराशि को प्रभु दर्शन की लालसा को पूरी करने हेतु समुद्र के जलचरों को एकत्र कर देखते हैं फिर तथा का दौड़ दौड़ कर जुट गये सब दर्शनातुर, जलचर वृंद – अपना स्वभाव त्याग कर
"देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा।
प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
मकर नक्र नाना झष ब्याला।
सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं।
एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं।
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे।
मन हरषित सब भए सुखारे॥

तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी।
मगन भए हरि रूप निहारी॥
सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

(५) अहल्या – अपने दुश्चरित्र के कारण निज पति के शाप वश जीवविहीन विरह स्थल में अनेक वर्षों से प्रभु के चरन स्पर्श की आशा किये अहल्या तप करती करती शिला के समान स्थल पड़ी है। जनकपुर जाने पथ पर विश्वामित्र जी ने सारा भेद बताया करुणानिधान की भक्त वत्सलता जग उठी और अपने पावन पदों से उस शिला का स्पर्श ही करते हैं। फिर क्या था इसकी सुषुप्ति पूरी हुई और स्तुति कर पावन हो पति-लोक को चली गयी –

आश्रम एक दीख मग माहीं।
खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।

सुकल कल्प मुनि कहा बिसेषी।।
गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर
परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही। ... चरनन्हि लागी।
जुगल नयन जल धार बही।। जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता। प्रगट भई सिव सीस धरी।। सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी।।

(५६) निषाद राज गुह- प्रभु श्रृंगबेरपुर पधारे हैं यह सुनते ही उन का सरवा अपने स्वजनों के साथ भेंट लेकर पहुंचता और समर्पित कर अति प्रेम से प्रभु को देखता रहता है। वो अपनी सारी राज्य सम्पति का भोग करने के लिये प्रभु से प्रार्थना करता है किन्तु सारी जानकर अति दुखित हो जाता है

करि दंडवत भेंट धरि आगे।
प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे।।
देव धरनि धनु धाम तुम्हारा।
मैं जनु नीचु सहित परिवारा।।

12450

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ।
थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु

किंतु प्रभु पर सांत्वना देता है। प्रभु के सो जाने पर रात भर निकट रहकर पहरा देता है। प्रभु को भूमि पर शयन करते देख अत्यन्त दुखी होता है तब लक्ष्मणलाल भाँति भाँति से उसे सांत्वना देते हैं। गंगा पार करने पर जब गुह को लौट जाने का आदेश देते हैं तब प्रभु उसकी आकृति से उसका आशय जान लिये इस लोग से गुह कर जोड़ दीन भाव से विनती करता है।

दीन बचन गुह कह कर जोरी।
बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई।
करि दिन चारि चरन सेवकाई॥
जेहिं बन जाइ रहब रघुराई।
परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
सहज सनेह राम लखि तासू।
संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥

12-2005

(१७) केवट – इसी लाइन का केवट प्रभु के पैर धोये बिना अपनी नाव पर नहीं चढ़ाने को हठ करके करुणा रस भरा है। सब भक्तों का हृदय छू करके वाले प्रभु आत्मसमर्पित हो कहे दिये हैं "बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू।" (२-१०१) केवट कठौते में गंगाजल से प्रभु के चरणों को धोकर उस चरनामृत को पीकर अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को पिलाकर अपने पितरों के तर्पण उसी चरणोदक से करके सब को तार लेता है फिर अति प्रसन्न हो प्रभु को पार ले जाता है और फिरती बार फिर दर्शन देने का वचन प्रभु से लेता है "पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार। पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार (२-१०१)
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा।। (२-१०२)

(१८) भरद्वाज – राम कथा के रसिक श्रोता भरद्वाज के आश्रम पर जब प्रभु पधारते हैं उस समय मुनि की दशा कितनी अवर्णनीय हो जाती है

"मुनि मन मोद न कछु कहि जाई।
ब्रह्मानंद राशी जनु पाई॥ (२-१०६)
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू।
आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सफल सकल सुभ साधन साजू।
राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी।
तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥ (२-१०७)

(५) वाल्मीकि — श्री राम-कथा के प्रथम रचयिता, आदि कवि, रामनाम का उल्टा जप करके भी जो ब्रह्म समान हो गये, जिनके हाथ में यह विश्व बेर के फल के समान, राम लखन और सीता के असली रूप को जानने वाले वाल्मीकि मुनि के आश्रम में प्रभु श्रीराम जब पधारते हैं तब उनकी दशा होती है

"देखि राम छबि नयन जुड़ाने।
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए।
बालमीकि मन आनँदु भारी।
मंगल मूरति नयन निहारी॥ (२-१२४)

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे।
चिदानंदमय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी।।(2-127)

(20) अत्रि मुनि - चित्रकूट से चलकर प्रभु अत्रि मुनि के आश्रम पर आते हैं
"अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ।।
पुलकित गात अत्रि उठि धाए।
प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने।(3-3)

(21) सरभंग मुनि - ब्रह्मा के धाम जाने वाले थे इतने में सुना कि श्री राम वन में आने वाले हैं। ब्रह्म लोक जाना त्याग कर दिनरात श्री राम आगमन की बाट जोहने लगते हैं। प्रभु के दर्शन करके अपनी सिद्धि प्राप्त हो गयी और प्रभु के सामने ही योग अग्नि में जलाकर देह त्याग कर प्रभु के बैकुंठ चले गये -
जात रहेउँ बिरंचि के धामा।

सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती।
अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना।
कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥
सो कछु देव न मोहि निहोरा।
निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
राम कृपा बैकुंठ सिधारा॥ ३-८।

(२४) सुतीक्ष्ण जी — श्री रामचरित मानस में यह भी एक प्रसंग है उपाख्यान है जो परम सीमा की अनन्यता का चित्रण करता है। मुनिवर सुतीक्ष्ण जी को श्रीराम का भी वनवासी रूप को छोड़ कर अन्य रूप नहीं भाता था। प्रेम में अद्भुतता है - मुनि जब प्रभु आगमन सुनते हैं तब हृदय में शंका भरी मनोरथ ले कर दौड़ते हैं कि क्या मेरे जैसे साधनहीन को दर्शन देने की कृपा करेंगे एक ही भरोसा उनको अपनी अनन्यता का है। प्रेम मग्न

मुनि ज्ञान है कि सुतीक्ष्ण जी इनको देखते हैं।
यह भी पता नहीं चलता कि किस दिशा में
जा रहे किस तरफ बढ़ रहे हैं। कभी
प्रेम में मन होकर उछलते हैं। कभी आगे और
कभी पीछे चलते हैं कभी (करते गुनगान) नृत्य करने
लगते हैं। मार्ग में प्रभु के वनवासी
रूप का हृदय में चिंतन करते हुए चल
ते जाते हैं।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा।
करत मनोरथ आतुर धावा॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं।
मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं।
भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा।
पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
मुनिहि राम बहु भाँति जगावा।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा।
हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें।
बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
आगें देखि राम तन स्यामा।
सीता अनुज सहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी।
प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा।
मानहु चित्र माझ लिखि काढ़ा॥

मुनि को मनवाँछित वर देकर जब प्रभु अगस्त्य जी के लिये चलते हैं तब सुतीक्ष्ण जी ने हृदय में प्रभु के साथ अगस्त्य आश्रम तक रहने की इच्छा प्रबल हो उठी और प्रभु से निवेदन करते हैं

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ।
भए मोहि एहिं आश्रम आएँ।।
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं।
तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं।। ([illegible])

(२३) अगस्त्य मुनि — श्री राम कथा के रसिक वक्ता हैं अगस्त्य जी जहाँ स्वयं भगवान शंकर सती के साथ कथा सुनने जाकर रहते हैं। ये दिन रात राम का जप करते रहते हैं जब उनके शिष्य सुतीक्ष्ण ने प्रभु के पधारने की सूचना उनको दी तब

"तुरत अगस्ति सुनत उठि धाए।
हरि बिलोकि लोचन जल छाए।।
पूजन करि बहु प्रकार प्रभु पूजा।
मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा।।

यद्यपि अगस्त्य जी निर्गुण ब्रह्म को जानते और बखानते हैं तो भी हृदय में सगुण ब्रह्म (राम) के प्रति प्रेम है

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता।
अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।।

1448)

प्रभु सब उर बखानहुँ जानहुँ।
फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानहुँ।। (3-13)

(ख) जटायु – रावण सीता को हर कर ले जा रहा है सीता का विलाप सुन कर सीता को छुड़ाने के लिये रावण पर आक्रमण करते हैं और इस संघर्ष में रावण इनकी पंख काट कर इन्हें घायल कर देता है। कटे पंख खून से लथपथ जटायु के हृदय में प्रभु को सीता हरण करने की व्यथा देने की लालसा उठ रही है और मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ जटायु प्रभु के चरण देखने का स्मरण कर रहा है

आगें परा गीधपति देखा।
सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।
कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।। (3-30)

प्र.8. उक्ति विवेचित करने को प्रस्तुत है

जनम सफल करता है

जाकर नाम मरत मुख आवा।
अधम उ मुकुत होइ श्रुति गावा।
सो मम लोचन गोचर आगें।
राखौं ~~[illegible]~~ देह नाथ केहि खाँगें॥
(3-31)

उनकी आत्मा ने छोड़ दिया। प्रभु उनसे ऐसा कहते हैं।

(25) सबरी — मतंग ऋषि के उपदेश पालन। प्रभु श्री राम के आगमन की प्रतीक्षा करती रही सबरी बूढ़ी हो जाने पर आशा नहीं छोड़ी- नित नये मीठे फल चख चख कर प्रभु को अर्पित करने के लिये रखती रही। प्रभु पधारते हैं सबरी प्रभु के श्री चरणों में लिपट जाती है आनंद विभोर हो अपने जूठे बेर प्रभु को अर्पित कर रही हैं और भक्त वत्सल प्रभु उनके विश्वास की सराहना कर रहे हैं — सबरी परी चरन लपटाई॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि।
(3-34)

14501

(२५) भक्तराज बालि - बालि प्रभु के वास्तविक स्वरूप को जानता है। सुग्रीव द्वारा ललकारने पर बाली अपनी पत्नि की सीख को ठुकरा कर यह कहता हुआ दौड़ पड़ता है - प्रभु के हाथ मृत्यु चाहता है

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥

अपने तीर मारने के बाद जब प्रभु उसके पास आते हैं तब

पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा।
सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ (४-९)

और जब प्रभु उसे जीवित रखने प्रन तत्काल तक जीवित रखने को कहते हैं तब भक्त की भावना देखने योग्य है

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा।
बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ
(४-१०)

चाहते हैं ताकि अपने अनुगामियों में भी प्रभु पद में भक्ति करवा लिया।

(२५) रावण — खर दूषण रावण के समान बलवान थे। इनके वध का समाचार जब वह शूर्पणखा से सुनता है उस समय अपने मन में यह निश्चित रूप से समझ लेता है कि श्री राम पर ब्रह्म के अवतार हैं — इस तामसी शरीर से भजन तो होने का नहीं तब एक ही उपाय है प्रभु के हाथ मर कर तर जाऊँ। मन वचन और कर्म तीनों से ऐसा दृढ निश्चय कर लेता है।

"खर दूषन मोहि सम बलवंता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा॥ (3-23)

1.4.52)

रावण का अन्तर्निश्चय - अर्थात हृदय में रावण स्वामी नहीं है उसने अपने सारे कुल को तारने का दृढ़ निश्चय मन में कर लिया है और यह तभी संभव हो सकता है जब प्रभु आकर लंका में युद्ध करें। अतः सारी कुलरेखा उसने मन में निश्चित रूप से बना ली और युद्ध भी निश्चय कर लिया कि यह भेद किसी पर भी प्रकट नहीं करूंगा - इसीलिये यद्यपि

अरण्य काण्ड में - मारीच और जटायु = २

सुंदर काण्ड में - जानकी जी, हनुमानजी, मंदोदरी, विभीषण, माल्यवान, लक्ष्मणजी पत्र द्वारा शुक = इस प्रकार कुल - ९

लंकाकाण्ड - मंदोदरी, प्रहस्त अंगद, माल्यवान, कालनेमि कुम्भकर्ण - कुल - ८

(मा.पी. तेजस्वी पृष्ठ २२ द्वारा) और १९ विभिन्न स्थलों पर उनसे १९ बार

समझाया जा सकता
निर्लिप्त कर्म बचपन से न छुपायें तो
नीति के अनुसार कह अपनी
आंतरिक भाव या किसी को भी नहीं
बताता अपितु सीता हरण, कटु युद्ध
का निमंत्रण श्रीराम को देता है।
जब हनुमानजी की पूँछ में आग लगाने
का आदेश देता है उस समय के इसके
कथन उसकी इस निश्चय के द्योतक हैं
"पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि।
तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई।
देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥ (सु-स)
जैसे इसे समझाया जाता उसकी
निश्चयात्मिक से आत्मिक दृढ होती
ही चली गयी (उसे अपना निधन सही लगता चला
गया का रहस्य समझाने वाले भी तो उसे श्रीराम
के लिये वही कहते थे जो उसकी निजी मान्यता
थी। रावण अनन्य (शत्रु) भाव से प्रभु का
स्मरण करता था अतः उसने प्रभु के लिये

१४५४)

इसमें शब्द उपयोग नहीं किया। सिर्फ
युद्ध के अंत में जब प्रभु ने उसके सिर और
भुजा काट डाले एवं धड़ के दो टुकड़े कर
डाले तब गर्जना कर बोल उठा।
"गर्जेउ मरत घोर रव भारी।
कहाँ राम रन हतौं पचारी॥(६-१०३)
और मृत्युकाल के ~~सु~~ राम नाम
उच्चारण के प्रभाव से उसकी ज्योति
प्रभु के मुख में समा गयी।
"तासु तेज समान प्रभु आननॉ(६-१०३)
(२८) कुम्भकर्ण
"भाव सहित शंकर जप्यौ,
कहि कुभाव मुनि बाल।
कुम्भकरण आलस जप्यौ
अजहु जपत दस भाल॥(दोहावली) दो.नं.५१२
देवर्षि नारद ने इसे उपदेश दिया था।
और यह आलस में पड़ा हुआ राम
नाम जपता रहता था। (यह सीताजी
को अपहरण और श्रीराम को
सब देवताओं से सेवित मानता।

अ० - अंगद बालि तनय जुबराजु ... चाहत कल्यान
(दो-५७)
श्री रघुबीर प्रभु बिभीषन सौंह देखब।
सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
तासु मुनि सोहि (?) ... कहा।
करहु ... सहित समय निरबाहा॥
(दो-६३)

प्रभु के रूप दर्शन का इंतजार कर
रहे प्रेम में पड़ने को जाता है और
उसकी प्रबल इच्छा होती है प्रभु
दर्शन की और प्रभु के हाथ से मरने
की इच्छा से रणभूमि में जाता है।

अस मैं (?) ... पुनि मोहि भाई।
लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन।
देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥
राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
(दो-६३)

उसकी आन्तरिक इच्छा पूरी करने
के लिये प्रभु सुग्रीव विभीषण एवं
लक्ष्मण को इशारे से युद्ध से
विरत करते हुए कहते हैं मैं निज में
इससे युद्ध करूँगा।

11456)

"सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥
(६-६७)

सिर कट जाने के बाद रावण
तेज प्रभु मुख में समा गया।

"तासु तेज प्रभु बदन समाना।
सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥
(६-७१)

(२६) वन मार्ग के निकटवर्ती
गाँवों में रहने वाले नर नारी

तीनों मूर्तियाँ वन को पैदल
चले जा रहे हैं। मार्ग के निकटवर्ती
गाँवों में बसने वाले ग्रामीण नर
नारियों का हाल देखिये-

"सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी।
चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी॥
राम लखन सिय रूप निहारी।
पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा।
सब भए मगन देखि दोउ बीरा।
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी।
लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
(२-११४)

अके नारि नर प्रेम पियासी।
* जनहु मृगी मृग देखि दिआ से। (२-११९)
हरहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं। (२-१२१)

रामचरितमानस की वह बाग है जिसमें कैसे कैसे अद्भुत सौरभ मय पुष्प गोस्वामी तुलसीदास जी ने लगा रखे हैं। रसिक प्रेमी जन जिनकी सौरभ का आनन्द लूटते लूटते अघाते ही नहीं।

श्रीराम जय राम जय जय राम
* प्रभु वहाँ से आगे जाने के लिये प्रस्थान करते हैं तब उनका मन पुष्प में अनुरक्त है उन्हीं के समान वाल्मीकि आदि तो हैं केवल तन से जा रहे हैं
"ऐसे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ" (२-११६)
और उनकी भावनाएँ हैं कि "जे मग पाइ पुरबिध नाहीं। ए रघुपतिहिं सखि जे बिरुद्ध नाहीं" (२-१२४)

(1458)

विजयी कौन (सं. ले. सं. 42)

29/3/82 प्रभु श्रीराम का स्वभाव है

राम सदा सेवक रुचि राखी।
बेद पुरान साधु सुर साखी॥ (2-219)

यह उक्ति देवगुरु बृहस्पतिजी की कितनी सही है इसका प्रमाण श्रीरामचरित मानस से एकत्रित करने का बाल प्रयास है यह

(1) दशरथ – श्रीराम वन गमन के बाद इनकी इच्छा थी राम वियोग में इस देह का त्याग – सुमंत्र के वापिस लौटने पर राम राम कहते हुए प्राण त्याग दिये।

(2) सीताजी – राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान (2-66)
अस कहि सीय बिकल भइ भारी।
बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा।
परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥ (2-68)

और अपने लेकर सीता की आन्तरिक इच्छा पूरी की प्रभु ने

3) लक्ष्मण — प्रभु के समझाने पर लक्ष्मण जी दीन भाव होकर कहते हैं "मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥ (2-72) इस पर प्रभु साथ चलने की अनुमति दे देते हैं"

(4) भरत — इनकी मान्यता थी कि अवध की सम्पत्ति एक मात्र अधिकारी श्री राम ही हैं "संपति सब रघुपति कै आही।" (2-186) स्वयं को श्रीराम का सेवक ही मानते थे "मोरें सरन रामहि की पनही।" (2-234) और चित्रकूट के लिये प्रस्थान करने से पहले सबसे आशीर्वाद माँगते ताकि श्रीराम अवध लौट आवें "पुनि पै पाँच जोरि अस बानी। आयसु आसिष ~~देह~~ देहु सुबानी। जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी॥ (2-183) किंतु जब प्रभु लौटने को राजी नहीं हुए तब माँगते हैं "सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥ (2-306)

और निषेध करने पर भी प्रभु की पादुका
देते हैं "प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही।(2-316)
भरत अयोध्या पहुँचने पर प्रभु पादुका
को सिंहासन पर विराजमान कर
उनसे आज्ञा ले लेकर कर्मचारी की
तरह राज्य का भार संभालते हैं।

(5) केवट – उत्कट आन्तरिक अभिलाषा है
प्रभु चरणोदक की सपरिवार तारने
हेतु पितरों को तारने की। कहता
है चरण कमल धोये बिनु नाव पर न
चढ़ाऊँगा। प्रभु "बेगि आनु जल पाय
पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू।(2-101)
कर उनकी इच्छा पूरी करते हैं

(6) बाली – आन्तरिक इच्छा है "जो कदाचित
मोहि मारहिं तो पुनि होउँ सनाथ(4-7)
और प्रभु के बाण से बिंधा जाने पर
जन्म जन्मान्तर में प्रभु पद भक्ति माँगता
है। और प्रभु वर दे उसे अपने धाम भेजते

(7) कुंभकर्ण – प्रभु के रूप गुणों का ध्यान
कर प्रभु के हाथ से मरने की

कुम्भकरण से युद्ध भूमि में कहता है जाहु न
निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर (६-६४)
प्रभु शर से उसका सिर काटते हैं और
उसकी ज्योति प्रभु मुख में समा जाती है
(५) रावण — प्रभु को परब्रह्म मानता है
हार्दिक अभिलाषा है प्रभु सर प्रान
तजौं भव तरऊँ (३-२३)। युद्ध में प्रभु
इसकी धड़ के दो टुकड़े कर देते हैं और
इसकी ज्योति प्रभु मुख में समा जाती है
जीत या हार का निर्णायक लौकिक
परिणाम होता है प्रभु का स्वभाव है
जन के हार जाने पर भी ऐसा पलटा कर
देते हैं कि जन की जीत होती है और
जन बड़ाई का भाजन बन जाता है
(७१-७) मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥ (२-२६०)
संतत दासन्ह देहु बड़ाई।
तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥ (३-९३)
प्रभु कृपा से ही उपरोक्त विजयी हुए
॥ श्री राम जय राम जय जय राम ॥

(1462)

21/3/82

क्यों चुप साध रहे भगवाना।
क्यों मोरि बेर बिरद बिसराने।।

भूल रहे क्यों स्वभाव जनरञ्जना।
कहीं जुठन कहीं छिलके खवाना।।

भजन न पाठ प्रभु कछु भी साधना।
भरोस केवल तेरी करुणा।।

बालक जान कसुर सब भुलना।
सेवक
अबोध पर अपनत्व जान अपनाना।।

अपना समझ देना चरन सरना।
सुफल हो 'शंकर' का जीवना।।

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।
दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।६२

(१५-४३)

(संस्मरण सं. ५३)

२३/३/९२ **३२ प्रेरक रघुवंश भूषण** १८-११३

(एक आत्मानुभूति)

मंगल भवन अमंगलहारी प्रभु श्री राम के चरित्र श्री रामचरितमानस के ~~निर्वाण~~ नियमित पाठ (चाहे कितने ही भावहीन होकिये जाते हों) की महिमा कितनी अपार है इससे प्रभु कितने पारमार्थिक एवं भौतिक योगक्षेम करते हैं इसी का आत्मानुभव प्रस्तुत करने में लिखने का प्रयोजन भगवत् कृपा का बखान करने के उद्देश्य से है इसमें आत्म श्लाघा के उद्देश्य की गंध तक नहीं है।

प्रसंग में प्रवेश के पूर्व सूक्ष्म में पूर्व-भूमिका जानना आवश्यक है ताकि प्रभु कृपा की महत्ता समझी जा सके। मेरे पिता एवं मेरी पत्नि मानस-प्रेमी थे किन्तु मैं आर्थिक कठिनाइयों से परेशान उदंड नास्तिक। सन १९५५ के नवम्बर में इनसेफिलाइटिस का शिकार बना, डाक्टरों ने जवाब दे दिया, सब ने मेरी जिंदगी की आशा छोड़ दी, किसी तरह मृत्यु मुख से निकला पर मस्तिष्क पूरा

(1968)

शून्य (blank) परिवार पर बोझ बन कर जीवन यापन होने के कारण, पुरुष हत्या को विवश कर चुका था सिर्फ कार्यान्वित करना बाकी था।

मनुष्य दुखों से घबड़ा जाता है पर भूल जाता है कि मंगलमय के सारे विधान ही मंगलमय होते हैं। होता है वही जो प्रभु की इच्छा होती है। प्रत्येक घटना वर्तमान में तो घटना मात्र ही है किन्तु भूतकाल की किसी घटना का फल अथवा भविष्य की घटना की बीज होती है। कुंती ने श्री कृष्ण से वर माँगा कि मुझे संसार का सबसे बड़ा दुख मुझे प्राप्त होता रहे, कारण पूछने पर बताया कि दुख अवस्था में ही तो जनके कष्ट निवारण के लिये आप की करुणामयी एवं आपके स्वरूप और दर्शन का सौभाग्य मिलेगा।

उपरोक्त तथ्यों का अनुभव कराने के लिये अब सूक्ष्म रूप में वर्तमान प्रसंग पर आना चाहिये।

① हरि के स्मरण से प्रेरित हो मैंने अपने शारीरिक एवं सामाजिक स्थिति से मुझे की सम्मानित भावना के विपरीत जान पड़ने लगी

की सलाह दी एवं प्रभु नाम की शरण लेने को
प्रेरित किया - किंतु मैं मानस पढ़ना नहीं
जानता था अतः ~~—~~ रामायण मेरी
कठिनाई एवं भ्रांति को दूर करने के लिये
सम्पूर्ण सद् योग दिया। इतना ही नहीं जब तक
मैंने नियमित पाठ चालू नहीं किया मेरा पीछा
नहीं छोड़ा। इस प्रकार मेरी जीवन धारा ही
को पारमार्थिक मार्ग दिखाया। यह सब
अपार कृपा उन्हीं की है। तब से मैंने
मानस का एक पाठ पूरा किया किंतु उद्धव ग्रंथ
की तरह मन कभी इधर कभी उधर भागता
रहा कि उसको दूर न किया जाय - स्तुति श्रीधरजी
के प्रसंग में लिख दिया था। मेरा निवास स्थान उन
दिनों शहर से बहुत दूर था। सत्संग का कोई साधन
ही नहीं था। सिर्फ श्रीराम चरित मानस ही मेरे
सत्संग की दाता रही।

(३) पारमार्थिक क्षेत्र में की प्रभु-कृपा के कुछ
दो घटना लिख रहा हूं।

(क) उपचालक कलकत्ते में मेरे एक दूर के
सम्बन्धी के लड़के हो गया जो भजन लिख रहे थे

(1465)

हृदय में प्रभु प्रेरणा जगी मैं रचनाओं का कुछ
संग्रह हो जाता, मेरी जिज्ञासा पर उन्होंने
एक पुस्तक बनवा दी।
(ख) गुर्जर समाज में उपदेश था ... द्वारा
निवासी श्री प्रानन्द स्वामी जी के दर्शन का
सौभाग्य मिला। उन्होंने उपदेश दिया कि बाह्य
शुद्धि से शुद्धि नहीं होती। अतः हृदय की शुद्धि
तो प्रभु प्रेम से ही होगी। फलतः शुद्धि अशुद्धि के फन्दे
को छोड़ कर प्रभु स्मरण में लग जाओ। चूंकि उन्होंने
स्पष्ट कहा अतः इस विषय में मुझे कुछ सन्देह का ही न
रहा। फिर श्री मद्भागवत सप्ताह यज्ञ में व्यास जी
वृन्दावन निवासी श्री राधा गोविंद शास्त्री महाराज ने भी
इसी विषय की पुष्टि की तब मन निश्चिन्त हो गया।
(ग) जून ७८ हर में एक पारिवारिक दुःखद घटना
घट गयी जिसने मेरे अंतःकरण में भय को डाल
इस घटना ने लौकिक जीवन की निःसारता दिखाकर
मेरे जीवन को ईश्वर की ओर मोड़ दिया। [illegible] और
नाम-स्मरण की लगन लग गयी।
(घ) इस बीच माला द्वारा नाम जप करने लगा
था। अचानक दीपावली ७८ पर दया में भीतर से प्रभु

प्रेरणा उठी कि माला द्वारा जप करने के बदले
जप संख्या का अनुमान लगा रहता है और यह प्र
मान नहीं बनती है कि इतनी संख्या जप हो गये
इसका मूल्य को गुणना हो सकेगा। प्रभु को इसके
के अवलोकन कर स्वयं को प्रभु के आधीन
क्यों नहीं करता। तब से ही माला से ध्यान हटाने
के लिये माला छोड़ दी ताकि स्वयं को गिनती
का पता ही नहीं है।

(3) पहली अगस्त 1988 को अचानक प्रभु
प्रेरणा उठी कि विनय, स्तुति एवं भजनों के
आधार पर श्री रामचरितमानस के पुष्पों को
चयन कर ~~लिखकर~~ माला पिरोई जाय। हिन्दी
का बहुत ही अल्प ज्ञान होने के कारण हिम्मत
नहीं पड़ती और अतः टालता चला गया किन्तु
जब से यह प्रेरणा उठी क्रमशः बलवती होती
चली गयी और बहुत समय तक यह तारतम्य
चलता चला गया और भावना उठी कि कर्तृत्व
अपने ऊपर न लेकर प्रभु पालना सीखे।
~~अब~~ निश्चिन्त रही कि मेरा अपना भाव
भाषा तो मेरे पास है नहीं, अतः अन्त के

प्रभु प्रेरणा को नतमस्तक स्वीकार किया।
इस स्मरण तक भी प्रसंग पद चिन्ह से
मन लोग न रूप में आते हैं प्रत्येक बार ही
नई प्रेरणा कृति होती थी (द्वती (मानव) और
भूलकर प्रचालक प्रभु के हैं यह दीन तो
परिवर्तन चालक के अनुसार चलता ही
चलता है।

इस प्रवृत्ति में श्री राम चरित मानस के
कथन के प्रति
~~[illegible]~~ मास पारायण में प्रत्येक बार ऐसी
नई बातें सामने आती रहती हैं कि मन
में विचार आता है कि यह तो पहले पता
ही नहीं था। यह विश्वास दृढ़ होता
गया कि लीला की सारी घटनाएँ पूर्व निश्चित
ही होती हैं। इनके रचयिता प्रभु ही हैं। केवल
प्रभु कृपा की सूचक है कारण मेरी तो यही
अनुभूति रही है कि जब जब पुकारा प्रभु
प्रभु ने एक डेग आगे बढ़कर खींचा ही है।
मानस के केवल नियमित पाठ से ही मानस
पटल पर सूक्ष्म रूप से किन्तु स्थायी रूप
से प्रभाव डालते हुए जीवन धारा को सही

धारण कर चढ़ा कर प्रभु का दास बना देता है। यदि प्रभुस्मरण के लिये मानस पढ़ा जाय तो भौतिक जीवन की विभिन्न समस्याओं की भी समुचित पूर्ति जबकि भी बहुत ही व्यवस्थित एवं कार्योचित रूप में मिलती है।

एक बार रामं उचार जाता।
तो कैसा राम कहुआ रहता।।
श्री रामायण यह पाठ पढ़ाती है कि

नर मरकट इव सबहि नचावत।
रामु खगेस बेद अस गावत।।(४-६)

उमा दारु जोषित की नाई।
सबहि नचावत रामु गोसाईं।।(४-७)

प्रभु का स्मरण करते हुए प्रथम विश्राम किया—
।।श्री राम जय राम जय जय राम।।

17/4/82

तुम सम कृपाल कौन प्रभु दूजो।
परम पतित पावन कियो जो॥

कृपा करन जन जन मह कै जो।
कुटि कुटिरन जो जन सौं सै जो॥

करु नाम ध्यान प्रभु कौन दूजो।
उत्ति छिन गिद्धन छूते पितु हरि जो॥

दृगजल जारत चाते रै रै जो
खगवर क्रियाकर पितु सम सनमाने जो

प्रेमाधिन प्रभु कौन प्रभु दूजो।
भिलनी के बैर जूठे रवाये जो॥

तुम सौं कारुण्य कौन प्रभु दूजो।
निषाद बिसलनै हिय घर लगाये जो।

(५७३)

गुनखुन ऐसो गुरन सुन्यौ।
पाँव परस राय जन हठ तारन्यौ ॥

कञ्चन मृग मारन रमापति धायौ।
प्रभु बदन निरखन जन सुख पायौ ॥

निहारूँ, प्रभु जी, बिरद न भूलो।
तरस दरस दे 'संकर' पत रख लो ॥

(५७७)

16/4/82 भाव आसा प्रेरणा प्रभु की।
चली केवल कलम किंकर की ॥

कर साक्षी सदा कृपा आप की।
हो स्वीकार सेवा प्रभु जन की ॥
संकर

(1473)

(378)

२९/५/८२

चला चली का आया मेला।
ले ले अब तो नाम अलबेला।।

धन पल भर का रह गया खेला।
कर मत प्यारे बिलकुल हेला।।

छोड़ कर जग का सब झमेला।
रट रे राम राम अलबेला।।

देंगे सब तज तुझे अकेला।
तजे न साथ राम अलबेला।।

बनावे वही तेरा खेला।
छोड़ मत संकर उसका अचला।।

11-10-81

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा।
आरति हरन बेद जसु गावा (१-५९)

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥ (५-२७)

सोउ तुम्ह जानहु अंतरजामी।
पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥ (१-१४९)

मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबंधु उर अंतरजामी॥ (२-६३)

बिनती बहुत करौं का स्वामी।
करुनामय उर अंतरजामी॥ (२-६६)

१२४५

कृपाल करुनासदन हो हे रघुनंदन।
लै लौ जन संकर सरन है जनरंजन।।३६

।। श्रीराम ।।

उत्कंठा

"पुष्प"

पाँचवीं कापी

कर से करम करो विधि नाना।
मन राखहु जहाँ कृपा निधाना।।

नजानुं साधन तो पद रचना को।
१९० है अर्पित निर्गंध पुष्प ये आपको।।
कर स्वीकार करो सफल जन्म मन को।
प्रभु पद सिर मम, नित धार कर आपको।

चोरस्वक

पृष्ठ संख्या १४७७ से १८५०
पद संख्या ३६५ से ३०८ ३८८
संकलन तालिका संख्या ४४ से ७७

रक्षक जो जीव का नींद में सोते हैं।
वही रक्षक सब जीव का सदा जागत में॥

२१०१
मैं सेवक समरथ का कभी न होय अकाज
पतिव्रता नांगी रहै, वाही पती को लाज॥

बाबा देख अपनी ओर

आ रहा काल लपका सब ओर।
नहीं कुछ भि सूझ अपचलका ओर॥

अनन्य, है न साधना का जोर।
आया सरन एक तेरी ओर॥

डाल करुन दृष्टि जरा इस ओर।
देख देख दरस देख अपनि ओर॥

(1478)

(380)

16-10-82 **वनवासी श्री राम**

करन कृपा वनवास चाहे रघुनंदन । टेक ।

तज राज सज साज वनवासि कृपा भवन ।
चलपड़े पूरन पितावर महि भार हरन ॥१

जा जा कुटि कुटि देन दरसन प्रेमी जन ।
बरसाने कृपा कहीं करुना जनसुखन ॥२

तारन असुर अरि भाव जो करें सुमिरन ।
देन दरसन वनचर नभचर जलचर जन ॥३

तज अवध अनुज सिया सह चले मुदित मन ।
सके न सह वियोग लगे संग सब पुरजन ॥४

तजे अर्धरात, छोड़ सोये, जब फिरेन ।
पहुँचे शृङ्गबेरपुर आयो गुह मिलन ॥५

बनाये प्रात सिर जटा मुकुट राम लखन।
धरा मुनि भेस, होते हिय विस्मय सकहू॥

तारे सपरिवार केवट धुलवा चरन।
उतर सुरसरि पार चल पड़े गुह सह वनु॥

पहुँचे प्रयाग भरद्वाज आश्रम पावन।
देख, धा, पुलक, भरे अंक, मुनि पुलक तन॥

देख, भये सुफल, मगवासि नारि नर नयन।
आये बाल्मिक आश्रम, मिले मुनि पुलक तनु॥

पा मुनि आज्ञा, बास गये चित्रकूट गिरिवन।
सुनमाने, दे पादुका, भरत फन राखनू॥

मिले जा जा कुटि कुटि, अत्रि सरभङ्ग सुतीक्षन
पूरी, रिसियन की कामना जन रंजनू॥

1480

पधारे जहँ हैं ता निस सम्भ-अदि ध्यान ।
मिले गदगद कुम्भज, पा सम्मुख सजीव नयन ॥१२

पाये मुनि समूह अलभ्य अलौकिक दरसन ।
किये सुखी यों तेरह बरस प्रेमी जन ॥१३

बस पञ्चवटि किये प्रभु दंडक वन पावन ।
करते सेवा सुर धर कोल किरात तन ॥१४

रिझि मनहर रूप पर सुपनखा रावन बहन ।
रखी प्रस्ताव कुलट, राम लक्षमन ने वरन ॥१५

काट नाक कान, दिये रावन निमंत्रन ।
मोहे रूप पर खर, जदपि आये थे लड़न ॥१६

तोड़े हत ससैन्य असुर त्रिसिर खर दूषन ।
सुन, रावन भेजा मारिच बना मृग कञ्चन ॥१७

चला मुदित, देखूं नयन भर, प्रभु ग्यान।
पुहि मारिच कामना, धाय धर धनु बान।। १८

करन चाहे, नारद साप बिधि वर प्रमान।
ले गया सीता, सूने में हर रावन।। १९

बिरह बिलपन लागे प्रभु नर लीला करन।
जुझ पड़ा बुढ़ा जटायु सिया छुड़ावन।। २०

पड़ा था धरा, घायल, हरि प्रभु पद देखन।
सिंहर उठे देख, लहुलुहान जन तड़फन २१

फीकी पड़ी हिय की बिरह जनित तड़फन
उमड़ बह चली करुना, सजल भये नयन २२

ले गोद, झाड़ धुल, लागे दृग जल धोवन
सहला रहे प्रभु, बड़भागी तजे प्रान २३

करन लगे विलाप प्रभु, पितु निधन सुनकर।
कर क्रिया सबकर, स्वधाम पठाये भगवान्।। २४

सुना पञ्चबटि आ बस चुके हैं [११०] भगवान।
लै वृद आस, करमि लै आवेंगे भगवान।। २५

[११] बैठु रहति द्वार, बिछाये पथ पर नयन।
लौट न जाँय फिरसे, सूने मैं भगवान।। २६

रखे रखिकर चरख चरख मिठे बेर करन अर्पन।
आ पहुँचे सबरि आश्रम पतित पावन।। २७

खाये सो मिलनि जुठन, प्रभु बखान बखान।
पथ पर प्रवर्सन पास, मिल गये हनुमान।। २८

किये सुग्रिव मीत, हते बालि इक हि बान।
दे मुदरि पठायें सिय खोजन हनुमान।। २९

पा सुयश बाँधा सिन्धु सेतु, आये पन्नावन।
चढ़ सेतु तारे असंख्य जलचर दे दर्शन 30

हते घननाद, पिशि जीति कुम्भकर्ण रावन।
दे लंक राज विभीषन फिरे चढ़ विमान। 31

जाते न जदि वन, होता न इनका ~~[illegible]~~ कष्टों
पाता कैसे जग भरत से भ्राता शिक्षण।। 32

करते न जदि नर सम विरह विलाप रुदन।
न होता न सती मोह, न गिरिजा अवतरन।। 33

करते न शिव अनंग मदन को कर दहन।
पाता न जग षन्मुख बिनु तारकासुर त्रान।। 34

अगम लख सब ही चरित तुम्हारे भगवन।
बरनूं किमि मूढ़, थके शारद सहस्रानन।। 35

1284

कृपाल करुनासदन हौ हे रघुनंदन।
लै लौ जन संकर सरन है जनरंजन।।३६

संकलन (55) (1585)

20/10/82 मुझे अपना लेना।

(बिन्दु जी पद्य पुष्प के आधार पर)

प्यारे राम! मुझे अपना लेना।
दुखी दीन को दास बना लेना।।

ठोकरें खाई बहुत झूठे जगत के प्यार पर।
इसलिये आये हैं सीतापति तुम्हारे द्वार पर।।

अब मुझे तारो न तारो यह तुम्हारे हाथ है।
गर न तारोगे तो बदनामी तुम्हारी नाथ है।।

जरा नाम की लाज बचा लेना।
प्यारे राम! मुझे अपना लेना।।

मुझे बुला लेना, दर्श दे देना।
चरनन लेना, कर में कर लेना।।

रणविधा - अगुन सगुन भए

(के)

जब अधर्म प्रबल है धर्म कुचलता।
आ प्रभु रूप नवधा धर्म पालता ॥१

महि भार हरन प्रभु अवतरते हैं।
जन कारन अगुन सगुन बनते हैं ॥२

जन रंजन प्रनतपाल प्रभु हो।
जन रक्षा व पत रखते आये हो ॥३

मत्स्य 6(718)
① मीन नाव चढ़ा मनु बचाये हो।
मत्स्य
② कच्छप पीठ पर्वत धर सिन्धु मथाये हो ॥४

③ बराह सिन्धु में हिरनाक्ष हते हो।
सूकर रसातल से महि उबारे हो ॥५

(4) परिहन प्रकार प्रह्लाद पत राखैं हो।
बिदार गउसुर प्रहलाद दुलारे हो ।।८

हयग्रीव मधु कैटभ हते हो ।।
हरि बालक ध्रुव ध्रुव पद दिये हो

(5) त्रिभुवनपति तो ११ पग भुमि जाचै हो
पाताल बलि द्वार प्रहरि बने हो ।।

(6) परशुराम उदण्ड क्षत्रिय नाशे हो
राम मर्याद कृष्ण लिला किये हो

राम साक्र सुत हत सुर्य सुत पाल्यो
कृष्ण साक्र सुत सुत बन सुर्य सुत हन्यो ।।१०

1५४४

(२७)

दसरथ सुत रूप राम अवतरे हो।
माता ब्रह्माण्ड मुख में दिखाये हो।।१

परस पाहन रिसि पत्नि किन्ये हो।
पद धुलवा केवट तारे हो।।२

पाछे धाय असुर आस पुरे हो।
भिलनि जुठन सराह खाये हो।।३

जन जनार्दन परस्पर प्रेमवस हो।
वह प्रसाद, प्रभु जुठन खाने हो।।४

स्वकर क्रिया कर गिध तारे हो।
प्रनत। विख्याति नहि सिर धरवारे हो।।५

जर जर कुटि कुटि स्वजन दर्स दिये हो।
स्मरन प्रभाव असुरहि हत तारे हो।।६

जल पर तिरत सिला सेतु बांधे हो।
सैतु चढ़ उतरी सैन्य जलचर लाई हो॥

एक पत्नि वृत पाठ पढ़ाये हो।
पत्नि राज प्रजा रघुवर उपदेशे हो॥
५८

(1690)

(३)

राम रूपमुग्ध ~~कोई~~ हृदय, कोई मधुर भाव भजे जी।
भाव अनुरूप रघुकुल बाल बाला बनि सर बने सो॥ १९

भाव भक्त उपाय लीला कर आस उनकी पुरै हो।
मथुरा बन्दिगृह बसुदेव देवकि सुत अवतरे हो॥ २०

लिला पुरुषोत्तम लिला करन गोकुल पधारे हो।
नन्द जसोदा सुत बन कर बाल्यकाल बिताये हो। २१

कृष्ण कन्हैया केशव बासुदेव नाम धराये हो।
शिशु हसन आवे असुरन्ह हस दर्श प्रभाव सोहे हो॥ २२

जाजा गोपीयन घर विविध बाल लीला करता।
बछड़ौं कि पूंछ पकड़ता, बछड़ा घसिटता जाता॥ २३

कभि चुरा माखन खा, मुख लपेट, हँस, हँसाता।
कभि त्रिभुवनपति नाच नाच धाध मांग हँसाता॥ २४

कभि छींके पर रक्खे माखन मांड फोड़ डालता
माखन खाता, सखन बांटता, बन्दरन खिलाता २५

हरबार गोपियें जा प्रेम भरा उलहना देतीं।
पूछे जब कान्हा इन्कार करता सब हंस पड़तीं २६

जम्हाई ले मुख में मां सारे ब्रह्मण्ड दिखाये हैं
माटी खा मुख में जसोदा ब्रह्मण्ड दर्श कराये हैं २७

उफनता दूध बचाने स्तन पिलाना तज मां जब
दधि मांड फोड़ छिके रखा माखन बन्दरन बांटे तब २८

छड़ी ले धरने धाये, पकड़, उखल बांधन लागी
रस्सी दो अंगुल छोटि होती रहि, बांध न सकि थकी २९

भगत प्रेम वश स्वयं बन्ध गये, भव बन्धन नाशक हरि
कमर बन्धे उखल घसीट, वृक्ष गिरा यक्ष उधारे हरि ३०

1892

सुरक्षा हेतु गोप समाज वृन्दावन जा बस रहा।
वहां भि दैत्यों का आना व मारना चालु रहा।। ३१

ग्वालबाल सखन संग वन में गाय चराने लगे।
यों गायें चरा चरा गोपाल कहलाने लगे।। ३२

वन में सखन संग नाच गान कुश्ति युद्ध खेलते
उनके संग भोजन समय जुठन खाते खिलाते ३३

भगत भगवान एक दूसरे के प्रेमाधिन हो।
वह प्रसाद पाते आप उनकी जुठन खाते हो।। ३४

कभि भगत घोड़ा बनते भगवान पिठ पर चढ़ते
कभि प्रभु घोड़ा बनते गोप सखे पिठ पर चढ़ते ३५

इस प्रकार बाल सखन संग बिविध बाल क्रिड़ा करी
सख्य भाव भजते जनों कि कामना पुरि प्रभु जी करी।। ३६

मोह वश ग्वालन में वत्स बालक ब्रह्मा चुरा छिपायो।
पञ्च वर्षिय कन्हैया ने हर वत्स सखा रूप धर लिये ३७

वत्स सखा रूप धरे प्रभु साम को घर घर फिरें जब
गाय धन पिलावीं मा सुत सेवा करन लगीं सब ३८

अतिशय अधिक स्नेह हिलोर मार रहा सबके उर
सुत रूप प्रभु सेवा करती रहीं, पुन जान, वर्ष भर ३९

एक वर्ष बीते विस्मित विरंचि यह देख सरमायो
कर जोड़ विनती किन्हि, "नाहि मैं मूढ प्रभु प्रभाव जान्यो ४०

एहि विधि विविध बाल क्रिड़ा कर सेवा करवाई।
वात्सल्य भावी जनों कि कामना पुरी प्रभु जी कयी। ४१

जननी सब स्व पुत्रों वत्सों को पहचानी न वर्ष भर
सृष्टि कर्ता मोह अभिमान नासे ऐश्वर्य दिखा कर ४२

(1597)

सर्प विस्मरि हवा से खड़ा चार प्रचर जल मइन लगे।
पुः बाल्कृषि के साथ नन्द जमुना में क्रिड़ा करने लगे ४३

देख कर, क्रुद्ध हो नाग लिपट कृष्ण को जकड़ बांध लिया
छूटे फनों पर चढ़ कर प्रभु ने नृत्य किया ॥४४

पद प्रहारों से घायल, अत्यन्त जाने राजि हुआ।
बड़े मानि के सिरों पर प्रभु पद रेख अंकित हुआ ॥ ४५

सिन विधि सिद्ध जोगि मुनि ध्यान में हि पाते तरसता।
सो प्रभु पद चिन्ह प्रत्यक्ष एक सौ एक फन सोहता ॥ ४६

पर पीड़क पर पीड़न पाप घड़ा जब भर जाता।
निर्बाध दायक क्रोध कर प्रभु उसका उद्धार करता ॥ ४७

अद्वितीय कृपा की वि प्रभु ने स्वकर शिष्य की किया कर।
अद्वितीय कृपा कीन्ह प्रभु नाग फन पदचिह्न अंकित कर ॥ ४८

जमुन तट दावानल योगेश्वर कृष्ण ने पी लिया।
फिर मुञ्जवट दावानल पि ब्रजनाथ ब्रज बचा लिया।। ४९

निवस्त्र नहाति गोपिन चिर हर कृष्ण जिन बिच पढ़ हृदय ये
खुले धार निवस्त्र स्नान मरजादा भंग बताये।। ५०

मुसलाधार बरसा किन्ही इन्द्र कर कोप ब्रज उपर।
रक्षा किन्हि सप्त वर्षीय कृष्ण सात दिन उठा गिरि कर पर ५१

वरुण निसि जल प्रवेस दोस नन्द हेर, छुड़ाये हो।
दरसनातुर वरुण प्रत्यक्ष दर्स दे कृत कृत्य किये हो।। ५२

1496

साँझहि सुरत पर मुग्धजन बनिता बढ़ गोकुल गढ़ा थे।
उन्हें गृह्य कुछ भी नहीं भाता जब से कृष्ण प्रकटे ॥ ५३

बाल खिलायें भारी गृहलौकिक चरित चिन्तन करतीं।
तन घर में, पर मन घनश्याम चरनन बंधी रहतीं ॥ ५४

सरद राका ज्योत्स्ना छिटक रही।
सितल मन्द सुगन्ध बयार बह रही ॥ ५५

मोहक मादक मुरलि ध्वनि निकलि जब
सब सुध खो स्याम मिलन दिवानि सब ५६

पति सेवा करति पति सेवा तजा।
सिसु स्तन पिलाती पिलाना तजा ॥ ५७

गाय दुहती धेनु दुहना तजा।
उबलते दूध को चूल्हे पर तजा ॥ ५८

दहि बिलोति धराइ निकालनो सज।
भोजन परोसती परोसना सज।। ७९

श्रृंगार करती श्रृंगार सज।
काजर लगाती घूघटा सज।। ८०

घुंघट खिसकत बसन लपेटे तन पर।
बावरि सी निकल धाई सज धर।। ८१

मन बंधा जहाँ माखन चोर।
आती जा रहि मुरलि नाद ओर।। ८२

जैसे नदी धाती सिन्धु ओर।
सिन्धु लहर उछालति शशि की ओर।। ८३

हाँफति पहुंची जहाँ नन्द किशोर।
छबि रस पी रहि जैसे चन्द चकोर।। ८४

1498

अनुचित किया अब निसा वन ओर।
फिर जाओ तुरत पति सिसु ओर।।६५

बिलखीं क्यों हो रहे निठुर बसिन ओर।
जायें कहाँ सब तज मन अप रक्खा प्रभु ओर।।६६

चरन सेवा करेंगी रहु किसोर।
सुन मुस्का अपनाये नन्द किसोर।।६७

जिन्हें न आने दिया घर वाले बरजोर।
तन नहीं दृग मींच ध्यानस्थ हुईं विभोर।।६८

जितनी गोपी उतने तन धर दसनविधि कन्हैया।।
रास रचाई नाच नाच गोपीनाथ कृष्ण कन्हैया।।६९

प्रभु कृपा का श्रेष्ठता अभिमान मन में जगा।।जब।
यह अभिमान नासने अन्तर्धान भए अर प्रभु तब।।७०

उन्मत्त हो गुन गा विविध कृष्ण लिलाएं करने लगीं
व्याकुल हो विरहिनि सखियाँ वृक्षों से पूछने लगीं ८१

खोजत देख प्रभु के इक सखि पद चिन्ह वहीं ग्रास खिली
पर विछिन्न भयीं जब सखि वन में विलख पछतानि मिली ८२

"मुरली, मिथ्या मान कर कँधो चंदन चह, हरि खोयी।"
सब विलख हरि गुन गाती जमुन रेत लौट आयी ८३

विलखति सखिन बिच योगेश्वर कन्हैया प्रगट भया
'विरहाग्नि हि प्रेम निखरता लाते' अन्तर्धान भया।। ८४

जैसी सखि तैसे कृष्ण नाच महारास रचाया।
थक जमुन प्रविष्ट जल क्रीड़ा कर सब का श्रम मिटाया।। ८५

ब्रह्म बेला सब सखिन को प्रभु निज निज घर पठाया।
पूरनकाम, नहीं काम लव लेश, अदृश्य हो समझाया ८६

(1500)

आत्मा परमात्मा का यह आत्म रास परमानन्द है।
इसमें [illegible] तन का अंश-संग लेश मात्र भी नहीं है ॥ ७७

विफल कंस कृष्ण मारन हेतु माया षड्यन्त्र रच कर।
भेजा अक्रूर को नन्द राम कृष्ण को लाने के ॥ ७८

किन्तु मधुर कामना उठ रही उसके भक्त हृदय में।
सब पूरी अन्तर्यामी प्रभु ने ले बाहु पाश में ॥ ७९

विरह सोच तड़प उठा वृन्दावन सुन कृष्ण के गमन को।
रस्ता रोके आगे खड़ी हैं गोपियाँ जोड़ कर को ॥ ८०

चले ग्यारह वर्षीय कृष्ण फिर मिलन वचन दे सबको।
साथ चले बाल सखा नन्दादि गोप सब मथुरा को ॥ ८१

रथ में छोड़ गायत्रि जपन लगे अक्रूर बैठ जल में।
विस्मित भए देख दोनों भाई साथ बैठे जल में ॥ ८२

जल से बाहर सिर निकाल देखा बैठे रथ में।
डुबकि लगाया देखा प्रभु बैठे सेस सैय्या में।। ८३

निकट पहुँच बिदा किये अक्रूर को।
सखन संग चले नगर देखन को।। ८४

मग मिला रजक लिये कंस वस्त्र को।
वस्त्र न दिया, कर से काटा सिर को।। ८५

बैठे सब पहन कंस वस्त्रों को।
दर्जि स्वतः काट ठिक किया वस्त्रों को।। ८६

दी सारुप्य मोक्ष पर लोक में।
ऐश्वर्य, धन, बल, स्मृति इह लोक में।। ८७

गये सुदामा माली घर को।
पूजा पहराये माला सब को।। ८८

1502

प्रसन्न हो अचला भक्ति दि प्रभु उसको।
मग मिलि त्रिवक्रा जाती महल को।। ८९

लिये अंगराग लगाने कंस को।
छवि पर मुग्ध. कृष्ण. लगा सजाई सबको।। ९०

प्रसन्न हो स्वपद से दबा पगों को।
उचकाया दे चिबुक तर उँगरि को।। ९१

कुबड़ गया, सीधी अति सुन्दर भयी
“घर चलो, अब दासी तव भयी”।। ९२

“फिर कभि आ पुरूँगा तव इच्छा को।”
सुन, आये कृष्ण नगर देखन को।। ९३

सिसु स्तन पिलाति पिलाना तज।
शृंगार करती शृंगार तज।। ९४

उबटन लगवाती नहाती तज।
वस्त्र पहरती उलटे ही वस्त्र पहर॥ ९५

कुन्डल पहरति इक कान में पहर।
नुपुर पहरति इक हि पैर में पहर॥ ९६

भोजन करती भोजन को तज।
भोजन परोसती परोसना तज॥ ९७

पुर नारि भाग जा चढ़ि राज पथ महल अटारिन पर
कृष्ण की मादक श्याम छवि माधुरि पीने नयनभर ९८

पथ पुरजन कतार खड़े करते सम्मान पूजा कर
ले फूल माला अक्षत चन्दन से पूज और आरति कर ९९

ईश भुवि जा जाय धनु सहज हि धनुष में तोड़ डाला।
टूटे टुकड़ों से प्रहरि व सैनिकों को मार डाला॥ १००

1584

गज गति चल नन्द पास फिर आये।
चिन्ता मिटी जब सब सुन पाये ॥१०१

इधर सुन सुन कंस भयभित भया।
परसुराम वचन याद आया ॥१०२

धनुष भंजक ही तुझे मारेगा।
विकल भया सोच कृष्ण मार देगा ॥ १०३

निसि न निंद कृष्ण मारने चुप रहा।
काल रूप कृष्ण मारने आ रहा ॥ १०४

विक्षिप्त सा हो योजना बनाया।
कुवलय गज खूब सुरा पिलवाया १०५

सूर्योदय पूर्व हि सबको बुलवाया।
मल्ल शाला मध्य स्थान बैठाया ॥ १०६

सुरा मत्त गज द्वार खड़ा रहे।
सो कुवलय आते ही कुचल दे।।१०७

प्रभु आते हि महावत गज उन पर ललकार दिया।
प्रभु उसे पछाड़, मार, दोनों दांत निकाल लिया।।
१०८

फिर अखाड़े पहुंच मल्लों और कुशिल कों मार दिया।
उछल, चढ़ मंच, धर केस कंस को भूमि पटक दिया।।
१०९

झट कूद छाती पर, प्रभु ने कंस को मार दिया।
असुरि भाव, पर हर धन, प्रभु चिन्तन फल सायुज्य दिया।।
११०

परपीड़क पर पीड़न पाप घड़ा जब भर जाता।
प्रभु का निर्वाणदायक क्रोध उसे निर्वाण देता।।
१११

असुर हत, विधि मोह हर, गिरि धर, ऐश्वर्य प्रगटे हैं।
बाल सखन, गोपियन संग लीला किये प्रेमवश हैं।
११२

1506

उग्रसेन राज दे, अरु बसुदेव देवकि मुक्त किया।
गुरु गृह जा चौंसठ दिन में चौंसठों कला सिख लिया ॥ ११३

समुद्र में असुर मार पाँचजन्य शंख ले।
गुरु दक्षिणा दी, ला मृत गुरु सुत जमपुर से॥ ११४

पठाया वृन्दावन प्रभु ने ज्ञानी भगत उद्धव को।
देने सान्त्वना ज्ञान सुनाया विरहि गोपियों को॥ ११५

भया चकित उद्धव जब ठुकराई गोपियों ज्ञान को।
ज्ञान से बढ़ प्रेम की महत्ता सिखाये प्रभु उसको॥ ११६

उद्धव संग त्रिवक्रा घर जा आस पूरे।
अक्रूर को पांडव हित हस्तिनापुर भेजे॥ ११७

स्वजामाता कंस बध का बदला लेने।
~~मगध नृप जरासन्ध तेईस अक्षौहिनी सेना ले~~
तेइस अक्षौहिनी सेना ले मगध नृप जरासन्ध ने॥ ११८

अभिमन्यु नृपन संग जब मथुरा पर आक्रमण किया।
आकाश से सारथि दिव्यास्त्र सहित दो रथ आया।। ११९

चढ़ रथ ओधा कृष्ण राम सेन हत हय छोड़ दिया।
यों ही सत्रहबार चढ़ मगध आया पर हार खाया।। १२०

कालयवन लिए कोटि सैन ले मथुरा घेर लिया।
जोगबल द्वारका नगर सब जदुवंशियन पहुंचाया ।। १२१

रन तज भाग प्रभु गुफा घुस गया।
जवन पीछा कर पकड़ न पाया।। १२२

भूप वस मुचुकुन्द जगा भस्म भया।
दीर्घ काल सुर रक्षा फल वर पाया।। १२३

दीर्घ काल निद्रा भस्म हो जगानेवाला।
दर्श दे. मथुरा फिर, प्रभु सेन संहारा ।।१२४

1508

जुगों पूर्व से कालयवन काल का।
कारन काल स्यात निर्धारित था॥ १२५

जनम के पहले से जीव का काल निश्चित रहता।
इस ध्रुव सत्य को भुल जीव काल से क्यों है डरता॥ १२६

तेइस अक्षौहिनि सेना ले जरासन्ध फिर चढ़ आया।
कृष्ण हारकर रन छोड़ भाग रनछोड़ नाम धराया॥ १२७

रुक्मिनि लक्ष्मी की अंशावतार थी।
हरि श्री कृष्ण-चरन अनुरक्ता थी॥ १२८

बड़ा भाई रुक्मि कृष्ण-द्रोही था।
सिसुपाल से ब्याहन चाहता था॥ १२९

उसे ब्याह हित न्यौत बुलाया।
संग जरासन्ध ससैन आया॥ १३०